नयचन्द्रसूरिकृत—हम्मीर महाकाव्य और सैन्य-व्यवस्था

□ डॉ० गोपीनाथ शर्मा,

[(भूतपूर्व) प्रोफेसर, इतिहास, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर]

हम्मीर महाकाव्य की रचना नयचन्द्रसूरि ने चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के आस-पास की थी।[1] इस काव्य में पृथ्वीराज तथा हम्मीर के रणकौशल का परिचय मिलता है। वैसे तो कवि इन दोनों महावीरों का समकालीन नहीं है, परन्तु घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने लोकवार्ताओं और संस्मृतियों के आधार पर घटनाओं को लेखबद्ध किया था। इसके अतिरिक्त कवि के समय तथा हम्मीर के समय में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता है, जबकि ऐतिहासिक विषयों से प्रेम रखने वाला लेखक इनके बारे में अपने बाल्यकाल से उन्हें समकालीन व्यक्तियों से, जो उस समय तक रहे हों, सुनता रहा हो। जिन घटनाओं का उल्लेख हमारा लेखक करता है उनका वर्णन फारसी तवारीखों में में भी मूल रूप से मिलता है जिससे कवि-वर्णित सैन्य व्यवस्था में सन्देह के लिए स्थान अधिक नहीं रहता।

इस काव्य के तीसरे सर्ग में लगभग १०० पद्यों में पृथ्वीराज का वर्णन दिया गया है जिनमें पृथ्वीराज के चरित्र एवं उसके शहाबुद्दीन गौरी के साथ किये गये युद्ध का विवरण दिया गया है। प्रथम तराइन के युद्ध ११९०-११९१ ई० से स्पष्ट है कि राजपूत युद्ध प्रणाली में सम्पूर्ण दल से शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण करना होता था। यदि यह आक्रमण शत्रु को तत्क्षण विथकित कर देता तो राजपूतों की विजय हो जाती थी। इस युद्ध में पृथ्वीराज की सम्पूर्ण सेना[2] का दबाव इतना प्रबल था कि शत्रुओं के पाँव उखड़ गये। इस गतिविधि का फारसी तवारीखों[3] में भी उल्लेख मिलता है। संभवतः इस प्रणाली से गौरी अवगत नहीं था। यही कारण था कि उसे युद्धस्थल से भागना पड़ा। परन्तु इसी युद्धशैली के साथ नयचन्द्र हमें इस व्यवस्था के दोष की ओर भी संकेत करता है। वह यह है कि पृथ्वीराज ने इस विजय के बाद कभी आस-पास के प्रदेशों में मोर्चाबन्दी का कोई प्रबन्ध नहीं किया। इसी प्रकार उसने इन निकटवर्ती प्रदेशों के निवासियों से राजनीतिक सम्बन्ध भी स्थापित नहीं किये। इसका फल यह हुआ कि जब शहाबुद्दीन गौरी दुबारा भारतवर्ष में आया तो वह खर्पर, लंगार, भिल्ल आदि अर्द्धसभ्य जातियों को अपनी ओर मिलाने में सफल हुआ। इन जातियों के प्रदेश की रसद और उनका सहयोग विदेशी शत्रु की विजय के कारण बने। नयचन्द्र ने इस परिस्थिति को राजपूत पराजय का कारण माना है।[4]

दूसरे तराइन के युद्ध में ११९१ ई० गौरी अपनी पूरी शक्ति एक साथ प्रयोग में नहीं लाता, जबकि पृथ्वीराज

---

१. हम्मीर महाकाव्य, एक पर्यालोचन, पृ० २८.

२. फरिश्ता के अनुसार उसकी सेना में दो लाख अश्वारोही एवं तीस हजार हाथी थे।—भा० १, पृ० ५ व ७। इस संख्या में हमें सन्देह है।

३. तबकात-ए-नासिरी, पृ० ४६०, ४६३, ४६४.

४. हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ३, श्लोक १८-४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने सम्पूण सन्य-बल का उपयोग करता है। विदेशी सैनिक बारी-बारी से युद्ध में उतरते हैं, भागते हैं और पुनः मुड़कर शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं। राजपूत सैनिक एक ही दौड़ में अपनी परम्परा के अनुसार शत्रु को विथकित करना चाहते हैं, जैसा कि उन्होंने प्रथम युद्ध के समय किया था। परन्तु इस बार उन्हें सफलता नहीं मिली।[1] नयचन्द्रसूरि यह भी संकेत देता है कि राजपूत विशेषतः पदाति-पद्धति से परिचित थे, उनका अश्वारोहियों का जत्था प्रदर्शन मात्र के लिए था। इसीलिए लेखक लिखता है कि पृथ्वीराज जब नट नामक अश्व पर चढ़ा तो बजाय द्रुतगति से आगे बढ़ने के वह नाचने लगा। इसी स्थिति में शत्रु दल के किसी सैनिक ने पृथ्वीराज के गले में धनुष की प्रत्यंचा डाली, जिससे उसे नीचे उतरने को बाध्य होना पड़ा।[2] यहाँ अश्वदल के बल और व्यवस्था में राजपूतों का विश्वास नहीं होना स्पष्ट है। शत्रुओं के धनुष भी लेखक अधिक सधे हुए मानता है और संकेत करता है कि द्वितीय तराइन के युद्ध में राजपूत पदाति तथा भारी धनुषों के बल में विश्वास रखते रहे। लेखक की दृष्टि में शत्रुपक्ष की अश्वदल एवं उसके छोटे धनुष और उनका द्रुतगामी वार युद्ध के निर्णायक बने।

नयचन्द्रसूरि[3] इसी प्रकार अपने काव्य के नवम् सर्ग में हम्मीर के समय अलाउद्दीन के सेनानायक उलूगखाँ के रणथम्भौर के आक्रमण का वर्णन देता है। इस आक्रमण के समय राजपूत सेना, जिसका नेतृत्व हम्मीर का सेनानायक भीमसिंह कर रहा था, शत्रु दल पर टूट पड़ती है। सेना का एक साथ दबाव इतना प्रबल था कि शत्रु-सेना भाग जाती है। प्रथम तराइन की भाँति यहाँ राजपूत उसी सैन्य प्रणाली से विजयी होते हैं, परन्तु शत्रु इसको पूर्ण पराजय नहीं मानते। विजय के उल्लास में लौटती हुई फौज पर उलूगखाँ प्रत्याक्रमण करता है, जिसके फलस्वरूप भीमसिंह मारा जाता है और उसकी बाकी बची हुई फौज पुनः किले की शरण लेती है। विजयी शत्रुदल का नायक दिल्ली लौट जाता है।[4] इस आक्रमण के वर्णन में भी लेखक उसी राजपूत गतिविधि का वर्णन करता है जिसे पृथ्वीराज ने अपनाया था। लेखक की दृष्टि में भीमसिंह की यही भूल पराजय का कारण थी। फारसी तवारीखों के वर्णन तथा हम्मीर महाकाव्य के वर्णन यहाँ लगभग एक से हैं।

दसवें सर्ग में हिन्दूवार के युद्ध का वर्णन है जिसमें चारों ओर से चौहान सेना ने उलूगखाँ पर आकमण कर दिया। इस बार चौहान विजयी रहे, क्योंकि इनके हमले का दवाब शक्तिसम्पन्न था।[5] परन्तु ग्यारहवें सर्ग के आक्रमण की कहानी[6] पुनः वही है जब अलाउद्दीन ने भेद नीति को अपनाया था। राजपूतों ने अपनी परम्परा के अनुसार दुर्ग के संरक्षा की व्यवस्था की। कई दिनों की रसद, पानी तथा शस्त्रों को दुर्ग में एकत्रित किया गया।[7] बारहवें तथा तेरहवें सर्ग में हम्मीर और अलाउद्दीन के दो दिन के संग्राम का वर्णन है।[8] इससे प्रतीत होता है कि राजपूत शत्रुओं के द्वारा अपनाई गई गतिविधि को कुण्ठित करने में क्षमता रखते थे। जहाँ मिट्टी, पत्थर तथा लकड़ी के टुकड़ों एवं पूलियों से दुर्ग की खाइयों को भर कर शत्रु दुर्ग पर चढ़ने की व्यवस्था करते थे, वहाँ चौहान शस्त्रों के वार से तथा अग्नि के प्रयोग से उनकी व्यवस्था को नष्ट भी कर देते थे। राजपूतों की इस प्रकार अपनाई गई विधि

---

१. तबकात-ए-नासिरी, भाग १, पृ० ४६४ ; तारीख-ए-फरिश्ता, भाग १, पृ० १७५ ; जमीउल हिदायत, इ० डा०, भाग० २, पृ० २००.

२. हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ३, श्लोक, ५१-६४.

३. हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ९, श्लोक ९१-१२५.

४. वही, सर्ग ९, श्लोक १२६-५०,

५. वही, सर्ग १०, श्लोक २९-६९.

६. वही, सर्ग ११, श्लोक १-२४, २५-६९.

७. वही, श्लोक ७०-१०३.

८. वही, सर्ग १३, श्लोक १-३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झालोर[1] तथा चित्तौड़[2] के आक्रमण के समय भी दिखाई देती है। हमारा लेखक हमें सूचित करता है कि जब शत्रुओं ने खाइयों को लकड़ी व घास से पाटने का प्रयत्न किया तो हम्मीर के सैनिकों ने अग्नि के गोलों से खाई की लकड़ी आदि को भस्म कर दिया और सुरंगों में लाख से मिला हुआ उबलता तेल डालकर शत्रु सेना को भस्मसात् कर दिया।[3]

इसी सर्ग के अन्तिम भाग में कवि ने पराजय के समय अपनाये जाने वाले प्रयोगों का भी वर्णन किया है। जब किसी प्रकार दुर्ग की रक्षा किया जाना सम्भव प्रतीत नहीं हुआ तो हम्मीर ने अपना दरबार लगाया, नाच-गान की व्यवस्था की[4] और सभी अन्तिम बलिदान के लिए कटिबद्ध हो गये। यहाँ दरबार के लगने तथा रंभा के नृत्य के आयोजन के वर्णन में लेखक राजपूत-मनोवृत्ति का समुचित चित्रण करता है। ऐसे अवसर पर बलिदान के संकल्प की तुलना में सांसारिक सुखों को कोई स्थान राजपूत सैन्य व्यवस्था में नहीं है। आभूषण, द्रव्य, अन्न आदि के भण्डारों को सहर्ष नष्ट करने में एक राजपूत नहीं हिचकता। यहाँ तक कि हाथियों के मस्तक भी काट दिये जाते हैं जिससे शत्रु के हाथ कुछ न पड़े। इस अवसर पर रानियाँ तथा राजकुमारियाँ चिता में प्रवेश कर 'जौहर' व्रत का पालन करती हैं और बचे हुए रणवीर दुर्ग के फाटक खोलकर युद्ध में उतर जाते हैं। जौहर की भीषण ज्वाला के साथ युद्ध की प्रगति भयंकर रूप धारण करती है और एक-एक सैनिक युद्ध में नष्ट होकर अपने जीवन को सफल बनाता है।[5]

इस युद्ध-कौशल के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि नयचन्द्र सूरि अपने समय तक प्रचलित युद्ध पद्धति से भली-भाँति परिचित था। सम्भवतः चौहान ह्रास के साथ यह पद्धति आगे चलकर नया मोड़ लेती है। दुर्ग की रक्षा में सर्वनाश की स्थिति में मर-मिटने की परम्परा यहाँ से आगे चलकर समाप्त होती है, जिससे हमारा कवि परिचित नहीं था। राजपूतों का आगे का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि दो विभिन्न मोर्चों को बनाकर युद्धस्थल से बचकर निकलने तथा शत्रु दल को छकाने की व्यवस्था इस बलिदान से बाद राजपूत सीख चुके थे। कामरान के साथ होने वाले जैतसी का युद्ध[6] तथा हल्दीघाटी में लड़े जाने वाले युद्ध में राणा प्रताप का बचकर निकलना एवं युद्ध की प्रगति को बनाये रखना और युद्ध काल को लम्बा कर विजयी होने की युक्ति निकालना[7] इस परम्परागत युद्ध-शैली को छोड़ना सिद्ध करती है। मुगलों के साथ होने वाले आगे के युद्ध इस स्थिति को अधिक स्पष्ट कर देते हैं। औरंगजेब के समय सीसोदिया-राठौड़ संघ के १६८०-१६८१ ई० आक्रमण और प्रत्याक्रमण की कहानियाँ[8] भी नई युद्ध शैली की गति-विधि के अच्छे प्रमाण हैं।

□

---

१. कान्हड़दे प्रबन्ध, प्र० ४, प० ४५.
२. अमरकाव्य वंशावली, पत्र ३८ क.
३. हम्मीर महाकाव्य सर्ग १३, श्लोक ३६-४७.
४. वही, सर्ग १३, श्लोक १-३८.
५. हम्मीरकाव्य, सर्ग १३, श्लोक १६८-१८६ ; हम्मीरायण, पृ० १३१ ; फतूहात, २६७ ; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ३, पृ० ५१७ ; हरविलास, हम्मीर, पृ० ४४ ; लाल—हिस्ट्री ऑफ खिलजीज, पृ० ६३-६४.
६, राव जैतसी रो छन्द.
७. अमरकाव्य वंशावली, पत्र ४४ ; अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६६.
८. मासिर-ए-आलमगीरी, पृ० १६५-६६ ; राजविलास, सर्ग ११-१४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org